Chapter छियासठ

पौण्ड्रक—छद्म वासुदेव

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि किस तरह भगवान् कृष्ण काशी (वाराणसी) गये और वहाँ पौण्ड्रक तथा काशिराज का वध किया, किस तरह सुदर्शन चक्र से असुर को हराया, काशी नगरी को भस्म किया और सुदक्षिण को मारा।

जब बलदेव व्रज गये हुए थे तो मूर्खों के बहकावे में आकर करूष के राजा पौण्ड्रक ने अपने को असली वासुदेव घोषित कर दिया। इस तरह उसने इस संदेश के साथ भगवान् कृष्ण को ललकारा कि ''चूँकि मैं ही असली भगवान् हूँ इसलिए तुम इस पद पर अपना झूठा दावा तथा मेरे दिव्य प्रतीकों को त्याग दो तथा मेरी शरण ग्रहण करो। यदि ऐसा नहीं करते तो युद्ध के लिए तैयार रहो।''

जब उग्रसेन तथा उनके राज-दरबारियों ने पौण्ड्रक की इस झूठी शेखी को सुना तो वे दिल खोलकर हँसे। तब श्रीकृष्ण ने पौण्ड्रक के दूत से अपने स्वामी के पास यह संदेश ले जाने के लिए कहा, ''रे मूर्ख! मैं तुम्हें तथाकथित सुदर्शन चक्र तथा मेरे अन्य दिव्य प्रतीकों को जिन्हें धारण करने का तुमने दुस्साहस किया है, त्यागने के लिए बाध्य कर दूँगा। और जब तुम युद्धभूमि में धराशायी हो जाओगे तो तुम कुत्तों का भोजन बनोगे।''

तब भगवान् कृष्ण काशी गये। कृष्ण को युद्ध के लिए तैयारी करते देखकर पौण्ड्रक अपनी सेना लेकर उनका सामना करने के लिए शहर से बाहर निकल आया। उसका मित्र काशिराज उसके पीछे-पीछे रक्षक के रूप में आया। जिस प्रकार ब्रह्माण्ड की विनाश-अग्नि सभी दिशाओं के हर जीव को जला डालती है उसी तरह कृष्ण ने पौण्ड्रक तथा काशिराज की सेनाओं का संहार कर डाला। तत्पश्चात्

पौण्ड्रक को प्रताड़ित करके उन्होंने उसका तथा काशिराज दोनों के सिर अपने सुदर्शन चक्र से काट डाले। तत्पश्चात् वे द्वारका लौट आये। चूँकि पौण्ड्रक भगवान् का निरन्तर ध्यान करता रहा था, यहाँ तक कि उन्हीं के समान वेश धारण करता रहा था इसलिए उसे मुक्ति मिल गई।

जब कृष्ण ने काशिराज का सिर काटा तो उसका सिर उसके नगर में उड़ गया। जब उसकी रानियों, पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों ने इस सिर को देखा तो वे सभी लोग शोकमग्न हो गये। उसी समय अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए पौण्ड्रक-पुत्र सुदक्षिण शिवजी की पूजा करने लगा ताकि वह अपने पिता के हत्यारे को नष्ट कर सके। सुदक्षिण की पूजा से प्रसन्न होकर शिवजी ने उससे वर माँगने के लिए कहा तो उसने अपने पिता के हत्यारे का वध करने के लिए साधनों की याचना की। शिवजी ने उससे कहा कि वह इन्द्रजाल से दक्षिणाग्नि की पूजा करे। सुदक्षिण ने ऐसा ही किया। फलस्वरूप यज्ञकुण्ड की लपटों से सशरीर एक भयानक असुर प्रकट हुआ। यह असुर भयानक त्रिशूल लिए बाहर आया और तुरन्त ही द्वारका के लिए चल पड़ा।

जब यह असुर द्वारका पहुँचा तो वहाँ के लोग भयभीत हो उठे किन्तु कृष्ण ने उन्हें सुरक्षा का आश्वासन दिया और शिवजी की इन्द्रजाल सृष्टि का सामना करने के लिए अपने सुदर्शन चक्र को भेजा। सुदर्शन ने असुर को हरा दिया। वह असुर वाराणसी लौट आया और उसने सुदक्षिण तथा उसके पुरोहितों को भस्म कर दिया। सुदर्शन चक्र असुर का पीछा करते हुए वाराणसी में प्रविष्ट हुआ और पूरी नगरी को भस्म कर दिया। तब भगवान् का यह चक्र उनके पास द्वारका लौट आया।

श्रीशुक उवाच
नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ।
वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; नन्द—महाराज नन्द के; व्रजम्—ग्वालों के ग्राम की ओर; गते—चले जाने पर; रामे—बलराम के; करूष-अधिपतिः—करूष के शासक (पौण्ड्रक) ने; नृप—हे राजा (परीक्षित); वासुदेवः—भगवान्, वासुदेव; अहम्—मैं; इति—इस प्रकार सोचते हुए; अज्ञः—मूर्ख; दूतम्—संदेशवाहक को; कृष्णाय—भगवान् कृष्ण के पास; प्राहिणोत्—भेजा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, जब बलराम नन्द के ग्राम व्रज को देखने गये हुए थे तो करूष के राजा ने मूखर्तापूर्वक यह सोचकर कि ''मैं भगवान् वासुदेव हूँ'' भगवान् कृष्ण के पास अपना दूत भेजा।

तात्पर्य : चूँकि बलराम नन्द-व्रज गये हुए थे इसलिए पौण्ड्रक ने मूर्खतापूर्वक सोचा कि अब तो कृष्ण अकेले होंगे अत: उन्हें ललकारना आसान होगा। फलत: उसने भगवान् के पास अपना सिरफिरा संदेश भेजने का दुस्साहस किया।

त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्ण्नो जगत्पति: ।
इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम् ॥ २॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; वासुदेव:—वासुदेव; भगवान्—भगवान्; अवतीर्ण:—अवतरित; जगत्—ब्रह्माण्ड के; पति:—स्वामी; इति—इस प्रकार; प्रस्तोभित:—चापलूसी में आकर, बहकावे में आकर; बालै:—बचकाने मनुष्यों द्वारा; मेने—उसने कल्पना की; आत्मानम्—अपने को; अच्युतम्—अच्युत भगवान्।

पौण्ड्रक मूर्ख लोगों की चापलूसी में आ गया जिन्होंने उससे कहा, ''तुम भगवान् वासुदेव हो और ब्रह्माण्ड के स्वामी के रूप में अब पृथ्वी में अवतरित हुए हो।'' इस तरह वह अपने आपको भगवान् अच्युत मान बैठा।

तात्पर्य : पौण्ड्रक ने मूर्खतावश अज्ञानी व्यक्तियों की चापलूसी मान ली।

दूतं च प्राहिणोन्मन्द: कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने ।
द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुध: ॥ ३॥

शब्दार्थ

दूतम्—दूत को; च—तथा; प्राहिणोत्—भेजा; मन्द:—मन्द बुद्धि; कृष्णाय—कृष्ण के पास; अव्यक्त—अकथ्य; वर्त्मने—जिसका मार्ग; द्वारकायाम्—द्वारका में; यथा—जिस तरह; बाल:—बालक; नृप:—राजा; बाल—बालकों द्वारा; कृत:—बनाया गया; अबुध:—मूर्ख।

अतएव उस मन्द बुद्धि पौण्ड्रक ने अव्यक्त भगवान् कृष्ण के पास द्वारका में एक दूत भेजा। पौण्ड्रक ऐसे मूर्ख बालक की तरह आचरण कर रहा था जिसे अन्य बालक राजा मान लेते हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार पौण्ड्रक के कृष्ण के पास दूत भेजने का शुकदेव गोस्वामी द्वारा दुबारा उल्लेख किये जाने का कारण यह है कि महामुनि स्वयं पौण्ड्रक की निपट मूर्खता पर चकित हैं।

दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् ।
कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसन्देशमब्रवीत् ॥ ४॥

शब्दार्थ

दूतः—सन्देशवाहक ने; तु—तब; द्वारकाम्—द्वारका में; एत्य—पहुँच कर; सभायाम्—राजसभा में; आस्थितम्—उपस्थित; प्रभुम्—सर्वशक्तिमान स्वामी; कृष्णम्—कृष्ण से; कमल—कमल की; पत्र—पंखुड़ियों (सदृश); अक्षम्—आँखों वाले; राज—अपने राजा का; सन्देशम्—सन्देश; अब्रवीत्—कहा।

द्वारका पहुँचने पर दूत ने कमल-नेत्र कृष्ण को उनकी राजसभा में उपस्थित पाया। उसने राजा का सन्देश उन सर्वशक्तिमान प्रभु को कह सुनाया।

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ।
भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याभिधां त्यज ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

वासुदेवः—वासुदेव; अवतीर्णः—इस जगत में अवतरित हुआ; अहम्—मैं; एकः एव—एकमात्र; न—नहीं; च—तथा; अपरः—दूसरा कोई; भूतानाम्—जीवों पर; अनुकम्पा—दया दिखाने के; अर्थम्—हेतु; त्वम्—तुम; तु—किन्तु; मिथ्या—झूठा; अभिधाम्—उपाधि; त्यज—छोड़ दो।

[पौण्ड्रक की ओर से दूत ने कहा] : मैं ही एकमात्र भगवान् वासुदेव हूँ और दूसरा कोई नहीं है। मैं ही इस जगत में जीवों पर दया दिखलाने के लिए अवतरित हुआ हूँ। अतः तुम अपना झूठा नाम छोड़ दो।

तात्पर्य : देवी सरस्वती की प्रेरणा से श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इन दो श्लोकों का असली आशय प्रस्तुत करते हैं: ''मैं वासुदेव अवतार नहीं हूँ अपितु तुम्हीं वासुदेव हो, अन्य कोई नहीं है। चूँकि तुम जीवों पर दया दिखलाने के लिए अवतरित हुए हो अतः मेरी यह झूठी उपाधि छुड़वाइये जो उस सीप की तरह है, जो अपने को चाँदी मान बैठी है।'' भगवान् निश्चित रूप से इस अनुरोध को पूरा करेंगे।

यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद्बिभर्षि सात्वत ।
त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद्देहि ममाहवम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यानि—जिन; त्वम्—तुम; अस्मत्—हमारे; चिह्नानि—प्रतीकों को; मौढ्यात्—मूढ़तावश; बिभर्षि—धारण करते हो; सात्वत—हे सात्वतों में प्रमुख; त्यक्त्वा—छोड़ कर; एहि—आओ; माम्—मेरी; त्वम्—तुम; शरणम्—शरण के लिए; न—नहीं; उ—अन्यथा; चेत्—यदि; देहि—दो; मम—मुझको; आहवम्—युद्ध।

हे सात्वत, तुम मेरे निजी प्रतीकों को छोड़ दो जिन्हें इस समय तुम मूर्खतावश धारण करते हो और आकर मेरी शरण लो। यदि तुम ऐसा नहीं करते तो मुझसे युद्ध करो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती पुनः सरस्वती देवी की प्रेरणा से पौण्ड्रक के शब्दों की व्याख्या करते हैं। तदनुसार उनका अर्थ होगा, ''मैंने मूढ़तावश नकली शंख, चक्र, कमल तथा गदा धारण कर रखे हैं और आप मुझे इनका उपयोग करने की अनुमति देकर इनको बनाए रखे हुए हो। आप अभी

तक मुझे वश में करके इन नकली प्रतीकों को हटा नहीं पाये। अत: कृपा करके आइये और मुझे इन्हें त्यागने के लिए बाध्य करके मुझे मुक्त कीजिये। मेरे साथ युद्ध करके मुझे मार कर मुझे मोक्ष प्रदान कीजिये।''

श्रीशुक उवाच
कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्याल्पमेधस: ।
उग्रसेनादय: सभ्या उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥ ७॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; कत्थनम्—शेखी बघारने, डींग हाँकने को; तत्—उस; उपाकर्ण्य—सुनकर; पौण्ड्रकस्य—पौण्ड्रक की; अल्प—छोटी; मेधस:—बुद्धि वाले; उग्रसेन-आदय:—राजा उग्रसेन इत्यादि; सभ्या:—सभा के सदस्य; उच्चकै:—जोरों से; जहसु:—हँसने लगे; तदा—तब।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब अज्ञानी पौण्ड्रक की इस व्यर्थ की डींग को राजा उग्रसेन तथा सभा के अन्य सदस्यों ने सुना तो वे जोर-जोर से हँसने लगे।

उवाच दूतं भगवान्परिहासकथामनु ।
उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८॥

शब्दार्थ

उवाच—कहा; दूतम्—दूत से; भगवान्—भगवान्; परिहास—हँसी-मजाक; कथाम्—वाद-विवाद के; अनु—बाद; उत्स्रक्ष्ये—मैं फेंक दूँगा; मूढ—हे मूर्ख; चिह्नानि—प्रतीक; यै:—जिनके बारे में; त्वम्—तुम; एवम्—इस तरह से; विकत्थसे—डींग मार रहे हो।

सभा के हँसी-मजाक का आनन्द लेने के बाद भगवान् ने दूत से (अपने स्वामी को सूचित करने के लिए) कहा, ''रे मूर्ख! मैं निस्सनदेह उन हथियारों को फेंक दूँगा जिनके विषय में तुम इस तरह डींग मार रहे हो।''

तात्पर्य : संस्कृत के शब्द *उत्स्रक्ष्ये* के अर्थ हैं, ''मैं फेंक दूँगा, छोड़ूँगा।'' मूर्ख पौण्ड्रक ने चाहा था कि भगवान् कृष्ण अपने शक्तिशाली हथियार—यथा गदा तथा चक्र—का परित्याग कर दें। यहाँ भगवान् उत्तर देते हैं—*उत्स्रक्ष्ये मूढ चिन्हानि*—हाँ, मूर्ख, जब हम युद्धभूमि में मिलेंगे तो मैं इन हथियारों को छोड़ूँगा।

लीला पुरुषोत्तम *भगवान् श्रीकृष्ण* नामक पुस्तक में श्रील प्रभुपाद ने इस दृश्य का वर्णन सुंदर रीति से इस प्रकार किया है : ''जब राजा उग्रसेन समेत राजसभा के लोगों ने पौण्ड्रक द्वारा भेजा गया सन्देश सुना तो बड़ी देर तक वे जोर-जोर से हँसते रहे। सभा के सारे सदस्यों के अट्टहास का मजा ले चुकने

के बाद कृष्ण ने उस दूत को यह उत्तर दिया, ''हे पौण्ड्रक के दूत! तुम अपने स्वामी के पास मेरा सन्देश ले जाओ। वह निपट धूर्त है। मैं उसे धूर्त ही कहता हूँ और मैं उसके आदेशों का पालन करने से इनकार करता हूँ। मैं कभी भी वासुदेव के प्रतीकों, विशेषतया चक्र का परित्याग नहीं करूँगा। मैं इस चक्र का प्रयोग न केवल पौण्ड्रक का अपितु उसके सारे अनुयायियों का भी वध करने के लिए करूँगा। मैं इस पौण्ड्रक तथा उसके मूर्ख संगियों का विनाश कर दूँगा जो कि वञ्चकों तथा वञ्चितों के समाज के समान हैं।''

मुखं तदपिधायाज्ञ कङ्कगृध्रवटैर्वृतः ।
शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

मुखम्—मुख को; तत्—उस; अपिधाय—ढक कर; अज्ञ—रे अज्ञानी; कङ्क—चील्हों; गृध्र—गीधों; वटैः—वट पक्षियों से; वृतः—घिरा; शयिष्यसे—तुम सो जाओगे; हतः—मारे हुए; तत्र—तत्पश्चात्; भविता—तुम बनोगे; शरणम्—आश्रय; शुनाम्—कुत्तों के।

''रे मूर्ख! जब तुम मारे जाओगे और तुम्हारा मुख गीधों, चील्हों तथा वट पक्षियों से ढका रहेगा तो तुम कुत्तों का आश्रय-स्थल बनोगे।''

तात्पर्य : पौण्ड्रक ने मूर्खतावश भगवान् को अपनी शरण में आने के लिए कहला भेजा था किन्तु यहाँ भगवान् उसे कहला भेजते हैं, ''तुम मेरी शरण नहीं हो अपितु तुम कुत्तों की शरण बनोगे जब वे तुम्हारे शव को प्रसन्नतापूर्वक खायेंगे।''

श्रील प्रभुपाद ने इस दृश्य का विस्तृत वर्णन किया है, ''[भगवान् कृष्ण ने पौण्ड्रक से कहा, ''जब मैं तुम्हारा विनाश करूँगा] रे मूर्ख राजा, तब तुम्हें शर्म से अपना मुख छिपाना पड़ेगा और जब मेरे चक्र से तुम्हारा सिर तुम्हारे शरीर से कट कर अलग होगा तो मांसभक्षी पक्षी, यथा चील्ह, गीध तथा बाज तुम्हें घेर लेंगे। उस समय तुम मेरी शरण बनने के बजाय जो तुमने माँगी है, इन अधम पक्षियों की कृपा के पात्र होगे। उस समय तुम्हारा शरीर कुत्तों के सामने फेंक दिया जायेगा जिसे वे बड़े ही हर्ष से खायेंगे।''

इति दूतस्तमाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ।
कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥ १० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार कह कर; दूतः—दूत; तम्—उन; आक्षेपम्—अपमानों को; स्वामिने—अपने स्वामी के प्रति; सर्वम्—पूर्णतः; आहरत्—ले गया; कृष्णः—कृष्ण; अपि—तथा; रथम्—अपने रथ पर; आस्थाय—सवार होकर; काशीम्—वाराणसी; उपजगाम ह—के निकट गये।

जब भगवान् इस तरह बोल चुके तो उनके अपमानपूर्ण उत्तर को उस दूत ने अपने स्वामी के पास जाकर पूरी तरह कह सुनाया। तब भगवान् कृष्ण अपने रथ पर सवार हुए और काशी के निकट गये।

तात्पर्य : लीला पुरुषोत्तम *भगवान् श्री कृष्ण* नामक पुस्तक में श्रील प्रभुपाद ने उक्त घटना का वर्णन इस प्रकार किया है : ''वह दूत कृष्ण का सन्देश अपने स्वामी पौण्ड्रक के पास लाया जिसने इन सारे अपमानों को धैर्यपूर्वक सुना। बिना विलम्ब किये श्रीकृष्ण तुरन्त ही धूर्त पौण्ड्रक को दण्ड देने के लिए अपने रथ पर सवार होकर चल दिये। चूँकि उस समय करूषराज (पौण्ड्रक) अपने मित्र काशीराज के पास रह रहा था इसलिए कृष्ण ने सम्पूर्ण काशी नगरी को घेर लिया।''

पौण्ड्रकोऽपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ।
अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

पौण्ड्रकः—पौण्ड्रक; अपि—तथा; तत्—उसका; उद्योगम्—तैयारी; उपलभ्य—देखकर; महा-रथः—बलशाली योद्धा; अक्षौहिणीभ्याम्—दो अक्षौहिणियों द्वारा; संयुक्तः—साथ हो लिए; निश्चक्राम—बाहर गया; पुरात्—नगर से; द्रुतम्—तुरन्त।

भगवान् कृष्ण द्वारा युद्ध की तैयारी को देखते हुए बलशाली योद्धा पौण्ड्रक तुरन्त ही दो अक्षौहिणी सेना के साथ नगर के बाहर निकल आया।

तस्य काशीपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप ।
अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत्पौण्ड्रकं हरिः ॥ १२ ॥
शङ्खार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् ।
बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥ १३ ॥
कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् ।
अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका (पौण्ड्रक का); काशी-पतिः—काशी का स्वामी; मित्रम्—मित्र; पार्ष्णि-ग्राहः—पीछे से रक्षक के रूप में; अन्वयात्—पीछे पीछे गया; नृप—हे राजा (परीक्षित); अक्षौहिणीभिः—अक्षौहिणियों समेत; तिसृभिः—तीन; अपश्यत्—देखा; पौण्ड्रकम्—पौण्ड्रक को; हरिः—कृष्ण ने; शङ्ख—शंख; अरि—चक्र; असि—तलवार; गदा—गदा; शार्ङ्ग—शार्ङ्ग धनुष; श्रीवत्स—वक्षस्थल पर बालों का श्रीवत्स चिह्न सहित; आदि—तथा अन्य प्रतीक; उपलक्षितम्—अंकित; बिभ्राणम्—

धारण किये हुए; कौस्तुभ-मणिम्—कौस्तुभ मणि; वन-माला—जंगली फूलों की माला से; विभूषितम्—सुशोभित; कौशेय—सुन्दर रेशम के; वाससी—वस्त्रों की जोड़ी; पीते—पीत; वसानम्—पहने; गरुड-ध्वजम्—जिसके झंडे में गरुड़ अंकित है; अमूल्य—अनमोल; मौलि—मुकुट; आभरणम्—आभूषण; स्फुरत्—चमकते हुए; मकर—मकर के आकार वाले; कुण्डलम्—कुण्डलों सहित।

हे राजन्, पौण्ड्रक का मित्र काशीराज उसके पीछे पीछे गया और वह तीन अक्षौहिणी सेना समेत पीछे के रक्षकों की अगुआई कर रहा था। भगवान् कृष्ण ने देखा कि पौण्ड्रक भगवान् के ही प्रतीक यथा शंख, चक्र, तलवार तथा गदा और दिखावटी शार्ङ्ग धनुष तथा श्रीवत्स चिन्ह भी धारण किये था। वह नकली कौस्तुभ मणि भी पहने था। वह जंगली फूलों की माला से सुशोभित था और ऊपर और नीचे उत्तम पीले रेशमी वस्त्र पहने था। उसके झंडे में गरुड़ का चिन्ह था और वह मूल्यवान मुकुट तथा चमचमाते मकराकृति वाले कुंडल पहने था।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् कृष्ण* में टीका की है, ''जब दोनों राजा कृष्ण का सामना करने भगवान् के समक्ष आये तो कृष्ण ने पहली बार पौण्ड्रक को आमने-सामने देखा।''

दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यं वेषं कृत्रिममास्थितम् ।
यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरीः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; तम्—उसको; आत्मनः—अपने ही; तुल्यम्—तुल्य, समान; वेषम्—वेश में; कृत्रिमम्—कृत्रिम, नकली; आस्थितम्—सजाये हुए; यथा—सदृश; नटम्—अभिनयकर्ता; रङ्ग—मंच में; गतम्—प्रवेश हुआ; विजहास—हँसे; भृशम्—खूब कस कर; हरिः—भगवान् कृष्ण।

जब भगवान् हरि ने देखा कि राजा ने उन्हीं जैसा अपना वेश बना रखा है, जिस तरह मंच पर कोई अभिनेता करता है, तो वे खूब हँसे।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने इस दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है : ''कुल मिलाकर पौण्ड्रक की वेशभूषा तथा पहनावा स्पष्ट रूप से बनावटी थे। कोई भी समझ सकता था कि वह बनावटी वेशभूषा में मञ्च पर वासुदेव का नाटक करने वाला कोई व्यक्ति था। जब श्रीकृष्ण ने पौण्ड्रक को अपनी भंगिमा तथा वेशभूषा का अनुकरण किये देखा तो वे अपनी हँसी रोक नहीं पाये, अतः वे जीभरकर हँसे।''

श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि भगवान् की वेशभूषा तथा उनकी चाल-ढाल का पूर्णतया अनुकरण करने के लिए पौण्ड्रक को शिवजी से वर प्राप्त था—यह तथ्य *पद्म पुराण* के उत्तरखण्ड में पाया जाता है।

शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः ।
असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

शूलैः—त्रिशूल से; गदाभिः—गदा से; परिघैः—नेचों से; शक्ति—शक्ति; ऋष्टि—एक प्रकार की तलवार; प्रास—लम्बा नुकीला अस्त्र; तोमरैः—तथा भालों से; असिभिः—तलवारों से; पट्टिशैः—कुल्हाड़ियों से; बाणैः—तथा बाणों से; प्राहरन्—आक्रमण किया; अरयः—शत्रुओं ने; हरिम्—भगवान् कृष्ण पर।

भगवान् हरि के शत्रुओं ने उन पर त्रिशूलों, गदाओं, नेचों, शक्तियों, ऋष्टियों, प्रासों, तोमरों, तलवारों, कुल्हाड़ियों तथा बाणों से आक्रमण किया।

कृष्णस्तु तत्पौण्ड्रककाशिराजयोर्
बलं गजस्यन्दनवाजिपत्तिमत् ।
गदासिचक्रेषुभिरार्दयद्भृशं
यथा युगान्ते हुतभुक्पृथक्प्रजाः ॥ १७॥

शब्दार्थ

कृष्णः—कृष्ण; तु—किन्तु; तत्—उस; पौण्ड्रक-काशिराजयोः—पौण्ड्रक तथा काशिराज की; बलम्—सेना को; गज—हाथी; स्यन्दन—रथ; वाजि—घोड़े; पत्ति—तथा पैदल; मत्—से युक्त; गदा—गदा; असि—तलवार; चक्र—चक्र; इसुभिः—तथा बाणों से; आर्दयत्—रौंदते हुए; भृशम्—बुरी तरह से; यथा—जिस प्रकार; युग—ऐतिहासिक युग के; अन्ते—अन्त में; हुत-भुक्—अग्नि (प्रलयंकारी); पृथक्—विभिन्न प्रकार के; प्रजाः—जीव।

किन्तु भगवान् कृष्ण ने पौण्ड्रक तथा काशिराज की सेना पर भीषण वार किया, जिसमें हाथी, रथ, घोड़े तथा पैदल सम्मिलित थे। भगवान् ने अपनी गदा, तलवार, सुदर्शन चक्र तथा बाणों से अपने शत्रुओं को उसी तरह रौंद दिया जिस तरह युगान्त में प्रलयाग्नि विविध प्रकारके प्राणियों को रौंदती है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् कृष्ण* में इस तरह टीका की है : ''राजा पौण्ड्रक के पक्ष के सैनिक कृष्ण पर अपने हथियारों की वर्षा करने लगे। हथियारों में त्रिशूल, गदा, ख भे, भाले, तलवारें, खंजर तथा बाण थे, जो लहरों की तरह उड़ते आ रहे थे और कृष्ण उनका सामना कर रहे थे। उन्होंने न केवल इन हथियारों को नष्ट-भ्रष्ट किया अपितु पौण्ड्रक के सिपाहियों तथा सहायकों को भी नष्ट कर दिया जिस तरह इस ब्रह्माण्ड के प्रलय के समय विनाश की अग्नि हर वस्तु को जलाकर स्वाहा कर देती है। विपक्षी दल के हाथी, रथ, घोड़े तथा पैदल सिपाही कृष्ण के हथियारों से तितर-बितर हो गये।''

आयोधनं तद्रथवाजिकुञ्जर-
द्विपत्खरोष्ट्ररिणावखण्डितैः ।
बभौ चितं मोदवहं मनस्विना-
माक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

आयोधनम्—युद्धभूमि; तत्—उस; रथ—रथों; वाजि—घोड़ों; कुञ्जर—हाथियों; द्विपत्—दो पैर वालों (मनुष्यों); खर—गदहों; उष्ट्रैः—तथा ऊँटों से; अरिणा—अपने चक्र से; अवखण्डितैः—खण्ड खण्ड किये; बभौ—चमक रही थी; चितम्—फैले हुए; मोद—हर्ष; वहम्—लाते हुए; मनस्विनाम्—बुद्धिमान को; आक्रीडनम्—खेल का मैदान, अखाड़ा; भूत-पतेः—भूतों के स्वामी, शिवजी के; इव—सदृश; उल्बणम्—भयंकर।

भगवान् के चक्र द्वारा खण्ड-खण्ड किये गये रथों, घोड़ों, हाथियों, मनुष्यों, खच्चरों तथा ऊँटों से पटा हुआ युद्ध क्षेत्र उसी तरह चमक रहा था मानो विद्वान को आनन्द प्रदान करने वाला भूतपति का भयावना अखाड़ा हो।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने इस दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है : ''यद्यपि विध्वंस किया हुआ युद्ध क्षेत्र संसार के प्रलय के समय शिवजी के नृत्य-स्थल जैसा लग रहा था किन्तु कृष्ण के पक्ष के योद्धा इस दृश्य को देखकर अत्यन्त प्रोत्साहित थे और वे और अधिक शक्ति से युद्ध कर रहे थे।''

अथाह पौण्ड्रकं शौरिर्भो भो पौण्ड्रक यद्भवान् ।
दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; आह—कहा; पौण्ड्रकम्—पौण्ड्रक से; शौरिः—भगवान् कृष्ण ने; भोः भोः पौण्ड्रक—अरे पौण्ड्रक; यत्—जो; भवान्—आपने; दूत—दूत के; वाक्येन—शब्दों से; माम्—मुझसे; आह—कहा; तानि—वे; अस्त्राणि—हथियार; उत्सृजामि—मैं छोड़ रहा हूँ; ते—तुम्हारे ऊपर।

तब भगवान् कृष्ण ने पौण्ड्रक को सम्बोधित किया : रे पौण्ड्रक! तूने अपने दूत के माध्यम से जिन हथियारों के लिए कहलवाया था अब मैं उन्हीं को तुझ पर छोड़ रहा हूँ।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् कृष्ण* में इस प्रकार लिखा है : ''इस समय भगवान् कृष्ण ने पौण्ड्रक से कहा, ''पौण्ड्रक! तुमने मुझसे भगवान् विष्णु के प्रतीकों को विशेषतया मेरे चक्र को छोड़ने के लिए अनुरोध किया था। अब मैं इसे तुझ पर छोड़ूँगा। सावधान! तू झूठे ही मेरा अनुकरण करते हुए अपने को वासुदेव घोषित कर रहा है। अतः तुझसे बढ़कर मूर्ख कोई नहीं है।'' कृष्ण के इस कथन से स्पष्ट है कि जो भी धूर्त अपने को ईश्वर घोषित करता है, वह मानव समाज में सबसे बड़ा मूर्ख है।''

त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाज्ञ मृषा धृतम् ।
व्रजामि शरनं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

त्याजयिष्ये—(तुमसे) छुड़वाकर रहूँगा; अभिधानम्—उपाधि; मे—मेरा; यत्—जो; त्वया—तुम्हारे द्वारा; अज्ञ—रे मूर्ख; मृषा—झूठे ही; धृतम्—धारण किये हुए; व्रजामि—जाऊँगा; शरणम्—शरण में; ते—तुम्हारी; अद्य—आज; यदि—यदि; न इच्छामि—नहीं चाहता हूँ; संयुगम्—युद्ध।

रे मूर्ख! अब मैं तुझसे अपना नाम छुड़वाकर रहूँगा जिसे तूने झूठे ही धारण कर रखा है। मैं तब अवश्य ही तेरी शरण ग्रहण करूँगा यदि मैं तुझसे युद्ध नहीं करना चाहूँगा।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद इस तरह लिखते है : ''हे पौण्ड्रक! अब मैं तुम्हें यह झूठा प्रतिनिधित्व त्यागने के लिए बाध्य कर दूँगा। तूने चाहा है कि मैं तेरी शरण लूँ। अब तेरी बारी है। अब हम लड़ेंगे और यदि मैं हारा और तू विजयी हुआ तो मैं अवश्य ही तेरी शरण आ जाऊँगा।''

इति क्षिप्त्वा शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौण्ड्रकम् ।
शिरोऽवृश्चद्रथाङ्गेन वज्रेणेन्द्रो यथा गिरेः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

इति—इन शब्दों के साथ; क्षिप्त्वा—चिढ़ाते हुए; शितैः—तेज; बाणैः—बाणों से; विरथी—रथविहीन; कृत्य—करके; पौण्ड्रकम्—पौण्ड्रक को; शिरः—उसका सिर; अवृश्चत्—काट लिया; रथ-अङ्गेन—अपने सुदर्शन चक्र से; वज्रेण—अपने वज्र से; इन्द्रः—इन्द्र; यथा—जिस तरह; गिरेः—पर्वत का।

पौण्ड्रक को इस तरह चिढ़ा कर भगवान् कृष्ण ने अपने तेज बाणों से उसका रथ विनष्ट कर दिया। फिर भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र से उसका सिर उसी तरह काट लिया जिस तरह इन्द्र अपने वज्र से पर्वत की चोटी को काट गिराता है।

तथा काशीपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्रिभिः ।
न्यपातयत्काशीपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तथा—उसी तरह; काशी-पतेः—काशिराज के; कायात्—शरीर से; शिरः—सिर; उत्कृत्य—काट कर; पत्रिभिः—अपने बाणों से; न्यपातयत्—उड़ते हुए भेज दिया; काशि-पुर्याम्—काशी नगरी में; पद्म—कमल के; कोशम्—फूल के कोश को; इव—सदृश; अनिलः—वायु।

भगवान् कृष्ण ने अपने बाणों से काशिराज के सिर को उसके शरीर से उसी तरह काट कर उसे काशी नगरी में जा गिराया मानो वायु द्वारा फेंका गया कमल का फूल हो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने बतलाया है कि कृष्ण ने काशिराज के सिर को शहर में क्यों फेंका: ''काशिराज ने युद्ध में जाते समय नागरिकों को वचन दिया था, 'हे काशीवासियो! आज मैं शत्रु

का सिर काट कर नगर में लाऊँगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं मानो।' राजा की पापी रानियों ने भी अपनी दासियों से डींग मारते कहा था, ''आज हमारे स्वामी द्वारका के प्रभु का सिर अवश्य लायेंगे।'' इसीलिए भगवान् ने काशी निवासियों को चकित करने के लिए राजा का सिर नगर में फेंक दिया।''

एवं मत्सरिणम्हत्वा पौण्ड्रकं ससखं हरिः ।
द्वारकामाविशत्सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मत्सरिणम्—ईर्ष्यालु; हत्वा—मार कर; पौण्ड्रकम्—पौण्ड्रक को; स—सहित; सखम्—उसके मित्र; हरिः—भगवान् कृष्ण; द्वारकाम्—द्वारका में; आविशत्—प्रवेश किया; सिद्धैः—स्वर्ग के योगियों द्वारा; गीयमान—गायी जाकर; कथा—उनके विषय में कथाएँ; अमृतः—अमृत तुल्य।

इस तरह ईर्ष्यालु पौण्ड्रक तथा उसके सहयोगी का वध करने के बाद भगवान् कृष्ण द्वारका लौट गये। ज्योंही वे नगर में प्रविष्ट हुए स्वर्ग के सिद्धों ने उनकी अमर अमृतमयी महिमा का गान किया।

स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः ।
बिभ्राणश्च हरे राजन्स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (पौण्ड्रक); नित्यम्—निरन्तर; भगवत्—भगवान् के; ध्यान—ध्यान द्वारा; प्रध्वस्त—पूर्णतया ध्वस्त; अखिल—समस्त; बन्धनः—बन्धन; बिभ्राणः—मानते हुए; च—तथा; हरेः—भगवान् कृष्ण का; राजन्—हे राजा (परीक्षित); स्वरूपम्—साकार रूप; तत्-मयः—उनकी चेतना में लीन; अभवत्—हो गया।

निरन्तर भगवान् का ध्यान करते रहने से पौण्ड्रक ने अपने सारे भौतिक बन्धनों को ध्वंस कर दिया था। हे राजन्, निस्सन्देह भगवान् कृष्ण के स्वरूप का अनुकरण करके अन्ततोगत्वा वह कृष्णभावनाभावित हो गया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* में लिखा है : ''जहाँ तक पौण्ड्रक का सम्बन्ध था वह भगवान् वासुदेव की भाँति मिथ्या ही वेश धारण करके किसी न किसी प्रकार से उनका चिन्तन करता रहता था। इसीलिए पौण्ड्रक को मुक्ति के पाँच प्रकारों में से सारूप्य मुक्ति प्राप्त हुई। इस तरह उसे वैकुण्ठ लोक में स्थान प्राप्त हुआ जहाँ भक्तगण भी अपने चारों हाथों में चार प्रतीक धारण करने वाले विष्णु के समान शरीर धारण किये रहते हैं। यथार्थ में पौण्ड्रक का ध्यान विष्णु रूप पर केन्द्रित था किन्तु वह अपने आपको विष्णु समझता था, जो कि अपराध था। किन्तु कृष्ण द्वारा वध हो जाने पर वह

अपराध भी जाता रहा। इस तरह उसे सारूप्य मुक्ति प्राप्त हुई और उसे भगवान् के ही समान रूप मिल गया।''

शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्डलम् ।
किमिदं कस्य वा वक्त्रमिति संशिशिरे जनाः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

शिरः—सिर; पतितम्—गिरा हुआ; आलोक्य—देखकर; राज-द्वारे—राजमहल के द्वार पर; स-कुण्डलम्—कुण्डल सहित; किम्—क्या; इदम्—यह है; कस्य—किसका; वा—अथवा; वक्त्रम्—सिर; इति—इस प्रकार; संशिशिरे—सन्देह व्यक्त किया; जनाः—लोगों ने।

राजमहल के द्वार पर पड़े हुए कुण्डल से विभूषित सिर को देखकर वहाँ पर उपस्थित सारे लोग चकित थे। उनमें से कुछ ने पूछा, ''यह क्या है?'' और दूसरों ने कहा, ''यह सिर है लेकिन, यह है किसका?''

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद इस प्रकार लिखते हैं: ''जब काशिराज का सिर नगरद्वार के भीतर आ गिरा तो लोग वहाँ एकत्र हो गये और उस अद्भुत वस्तु को देखकर वे चकित रह गये। जब उन्होंने देखा कि उसमें कुण्डल भी हैं, तो वे समझ गए कि यह किसी मनुष्य का सिर है। वे अनुमान लगाने लगे कि यह किसका सिर हो सकता है। कुछ लोगों ने सोचा कि यह कृष्ण का सिर है क्योंकि श्रीकृष्ण काशिराज के शत्रु थे और उन्होंने अनुमान लगाया कि हो न हो काशिराज ने उनका सिर नगर में इसलिए फेंका है कि लोग शत्रु के वध से प्रसन्न हो सकें। किन्तु अन्त में यह पता चल गया कि वह सिर कृष्ण का नहीं अपितु स्वयं काशिराज का था।''

राज्ञः काशीपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबान्धवाः ।
पौराश्च हा हता राजन्नाथ नाथेति प्रारुदन् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

राज्ञः—राजा का; काशी-पतेः—काशी के स्वामी; ज्ञात्वा—पहचान कर; महिष्यः—उसकी रानियाँ; पुत्र—उसके पुत्र; बान्धवाः—तथा उसके अन्य सम्बन्धी; पौराः—नगर के निवासी; च—तथा; हा—हाय; हताः—(हम) मारे गये; राजन्—हे राजा (परीक्षित); नाथ नाथ—हे नाथ, हे नाथ; इति—इस प्रकार; प्रारुदन्—जोर जोर से विलखने लगे।

हे राजन्, जब उन लोगों ने पहचाना कि यह उनके राजा—काशीपति का सिर है, तो उसकी रानियाँ, पुत्र तथा अन्य सम्बन्धी एवं नगर के सारे निवासी ''हाय! हम मारे गये! हे नाथ, हे नाथ!'' कह कर रोने लगे।

सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पतेः ।
निहत्य पितृहन्तारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥ २७॥
इत्यात्मनाभिसन्धाय सोपाध्यायो महेश्वरम् ।
सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

सुदक्षिणः—सुदक्षिण नामक; तस्य—उसका (काशिराज का); सुतः—पुत्र; कृत्वा—सम्पन्न करके; संस्था-विधिम्—दाह-संस्कार; पतेः—अपने पिता का; निहत्य—मार कर; पितृ—पिता का; हन्तारम्—मारने वाले को; यास्यामि—ले सकूँगा; अपचितिम्—बदला; पितुः—अपने पिता का; इति—इस प्रकार; आत्मना—अपनी बुद्धि से; अभिसन्धाय—निश्चय करके; स—सहित; उपाध्यायः—पुरोहितों; महा-ईश्वरम्—शिवजी की; सु-दक्षिणः—अत्यन्त दानी होने से; अर्चयाम् आस—पूजा की; परमेण—अत्यधिक; समाधिना—ध्यान से।

जब राजा का पुत्र सुदक्षिण अपने पिता का दाह-संस्कार कर चुका तो उसने अपने मन में निश्चय किया, ''मैं अपने पिता के हत्यारे का वध करके ही उसकी मृत्यु का बदला ले सकता हूँ।'' इस तरह दानी सुदक्षिण अपने पुरोहितों सहित बहुत ही लगन से भगवान् महेश्वर की पूजा करने लगा।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''काशिराज के स्वामी विश्वनाथ (शिवजी) हैं। भगवान् विश्वनाथ का मन्दिर अभी भी काशी में है और प्रतिदिन हजारों तीर्थयात्री अब भी मन्दिर में एकत्र होते हैं।''

प्रीतोऽविमुक्ते भगवांस्तस्मै वरमदाद्विभुः ।
पितृहन्तृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥ २९॥

शब्दार्थ

प्रीतः—सन्तुष्ट; अविमुक्ते—अविमुक्त में, काशी जनपद के अन्तर्गत पवित्र स्थल में; भगवान्—शिवजी; तस्मै—उसको; वरम्—वर; अदात्—दिया; विभुः—शक्तिशाली देवता; पितृ—पिता का; हन्तृ—वध करने वाला; वध—हत्या करने के लिए; उपायम्—साधन; सः—उसने; वव्रे—चुना; वरम्—अपने वर के रूप में; ईप्सितम्—इच्छित।

पूजा से सन्तुष्ट होकर शक्तिशाली शिवजी अविमुक्त नामक पवित्र स्थल में प्रकट हुए और सुदक्षिण को इच्छित वर माँगने को कहा। राजकुमार ने अपने पिता के वध करने वाले की हत्या करने के साधन को ही अपने वर के रूप में चुना।

दक्षिणाग्निं परिचर ब्राह्मणैः सममृत्विजम् ।
अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥ ३० ॥

साधयिष्यति सङ्कल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः ।
इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन्व्रती ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

दक्षिण-अग्निम्—दक्षिण अग्नि को; परिचर—तुम्हें सेवा करनी चाहिए; ब्राह्मणैः—ब्राह्मणों के; समम्—साथ; ऋत्विजम्—आदि पुरोहित को; अभिचार-विधानेन—अभिचार अनुष्ठान द्वारा (शत्रु को मारने या हानि पहुँचाने के लिए किया गया अनुष्ठान; सः—वह; च—तथा; अग्निः—अग्नि; प्रमथैः—प्रमथों द्वारा (शिवजी की टोली के शक्तिशाली योगी जो विभिन्न रूप धारण कर सकते हैं); वृतः—घिरे हुए; साधयिष्यति—सम्पन्न करेगा; सङ्कल्पम्—तुम्हारे मनोभाव को; अब्रह्मण्ये—ब्राह्मणों के शत्रु के विरुद्ध; प्रयोजितः—प्रयुक्त; इति—इस तरह; आदिष्टः—आदेश दिया हुआ; तथा—उसी तरह से; चक्रे—किया; कृष्णाय—कृष्ण के विरुद्ध; अभिचरन्—हानि पहुँचाने की इच्छा से; व्रती—व्रत करने वाला।

शिवजी ने कहा : ''तुम ब्राह्मणों के साथ अभिचार अनुष्ठान के आदेशों का पालन करते हुए आदि पुरोहित दक्षिणाग्नि की सेवा करो। तब दक्षिणाग्नि अनेक प्रमथों सहित तुम्हारी इच्छा पूरी करेगा यदि तुम इसे ब्राह्मणों से शत्रुता रखने वाले किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध निर्देशित कर सकोगे।'' इस प्रकार आदिष्ट सुदक्षिण ने अनुष्ठान व्रतों का दृढ़ता से पालन किया और कृष्ण के विरुद्ध अभिचार का आह्वान किया।

तात्पर्य : यहाँ पर स्पष्ट कहा गया है कि शक्तिशाली दक्षिणाग्नि को केवल उस व्यक्ति के विरुद्ध निर्देशित किया जा सकता है, जो ब्राह्मण संस्कृति के प्रतिकूल हो। किन्तु कृष्ण तो ब्राह्मणों के सर्वाधिक अनुकूल हैं और यथार्थतः ब्राह्मण संस्कृति का पालन करने वाले हैं। इस प्रकार शिवजी जानते थे कि यदि सुदक्षिण इस अनुष्ठान की शक्ति का प्रयोग कृष्ण के विरुद्ध करेगा तो वह स्वयं मर जायेगा।

ततोऽग्निरुत्थितः कुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः ।
तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥ ३२ ॥
दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदण्डकठोरास्यः स्वजिह्वया ।
आलिहन्सृक्वणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलत् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अग्निः—अग्नि; उत्थितः—उठा; कुण्डात्—यज्ञ वेदी के कुंड से; मूर्ति-मान्—साक्षात; अति—अत्यधिक; भीषणः—भयावना; तप्त—पिघले; ताम्र—ताँबे (जैसा); शिखा—चोटी; श्मश्रुः—दाढ़ी; अङ्गार—गर्म अंगारे; उद्गारि—उगलती हुई; लोचनः—आँखें; दंष्ट्र—दाँत; उग्र—भयावह; भ्रु—भौंहों के; कुटी—गड्ढों के; दण्ड—तथा तोरण से; कठोर—कर्कश; आस्यः—मुख; स्व—अपनी; जिह्वया—जीभ से; आलिहन्—चाटते हुए; सृक्वणी—अपने मुँह के कोनों को; नग्नः—नंग-धडंग; विधुन्वन्—हिलाता हुआ; त्रि-शिखम्—अपना त्रिशूल; ज्वलत्—लपलपाता।

तत्पश्चात् यज्ञकुण्ड से अत्यन्त भयावने नंग-धडंग पुरुष का रूप धारण कर अग्नि बाहर निकली। इस अग्नि सरीखे प्राणी की दाढ़ी तथा चोटी पिघले ताँबे जैसी थीं और उसकी आँखों

से जलते हुए गर्म अंगारे निकल रहे थे। उसका मुख दाढ़ों तथा भयावह कुटिल एवं गहरी भौंहों के साथ अत्यन्त भयावना लग रहा था। अपने मुख के कोनों को अपनी जीभ से चाटता हुआ यह असुर अपना ज्वलित त्रिशूल हिला रहा था।

पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कम्पयन्नवनीतलम् ।
सोऽभ्यधावद्वृतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन्दिशः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

पद्भ्याम्—अपने पैरों से; ताल—ताड़-वृक्षों की; प्रमाणाभ्याम्—माप वाला; कम्पयन्—हिलाता हुआ; अवनी—पृथ्वी के; तलम्—पृष्ठ को; सः—वह; अभ्यधावत्—दौड़ा; वृतः—घिर कर; भूतैः—भूत-प्रेतों के द्वारा; द्वारकाम्—द्वारका की ओर; प्रदहन्—जलाता हुआ; दिशः—दिशाओं को।

यह दैत्य ताड़-वृक्ष जैसी लंबी टाँगों से अपने साथ भूतों को लेकर, धरती को हिलाता तथा संसार को सभी दिशाओं में जलाता हुआ द्वारका की ओर भागा।

तमाभिचारदहनमायान्तं द्वारकौकसः ।
विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥ ३५॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; आभिचार—अभिचार अनुष्ठान से उत्पन्न; दहनम्—अग्नि को; आयान्तम्—निकट आते हुए; द्वारका-ओकसः—द्वारकावासी; विलोक्य—देखकर; तत्रसुः—भयभीत हो उठे; सर्वे—सभी; वन-दाहे—जंगल में आग लगने पर; मृगाः—पशु; यथा—जिस तरह।

अभिचार अनुष्ठान से उत्पन्न अग्नि तुल्य असुर को निकट आते देखकर द्वारका के सारे निवासी उसी तरह भयभीत हो उठे जिस तरह दावाग्नि (जंगल की अग्नि) से पशु भयभीत हो उठते हैं।

अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भयातुराः ।
त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥ ३६॥

शब्दार्थ

अक्षैः—चौसर से; सभायाम्—राज-दरबार में; क्रीडन्तम्—खेलते हुए; भगवन्तम्—भगवान् को; भय—भय से; आतुराः—क्षुब्ध; त्राहि त्राहि—रक्षा करो, रक्षा करो; त्रि—तीन; लोक—लोकों के; ईश—हे स्वामी; वह्नेः—अग्नि से; प्रदहतः—जल रहे; पुरम्—नगर को।

भय से किंकर्तव्यविमूढ़ लोगों ने उस समय राज-दरबार में चौसर खेल रहे भगवान् के पास रो-रो कर कहा, ''हे तीनों लोकों के स्वामी, नगर को जलाने वाली इस अग्नि से हमारी रक्षा कीजिये! रक्षा कीजिये!''

श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् ।
शरण्य: सम्प्रहस्याह मा भैष्टेत्यवितास्म्यहम् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; तत्—यह; जन—जनता की; वैक्लव्यम्—विकलता; दृष्ट्वा—देखकर; स्वानाम्—अपने ही लोगों को; च—तथा; साध्वसम्—विक्षुब्ध; शरण्य:—शरण के सर्वोत्तम साधन ने; सम्प्रहस्य—जोर से हँस कर; आह—कहा; मा भैष्ट—मत डरो; इति—इस प्रकार; अविता अस्मि—संरक्षण प्रदान करूँगा; अहम्—मैं।

जब कृष्ण ने लोगों की व्याकुलता सुनी और देखा कि उनके अपने लोग भी विक्षुब्ध हैं, तो एकमात्र सर्वश्रेष्ठ शरणदाता हँस पड़े और उनसे कहा, ''डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।''

सर्वस्यान्तर्बहि:साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभु: ।
विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥ ३८॥

शब्दार्थ

सर्वस्य—सबों के; अन्त:—भीतर; बहि:—तथा बाहर के; साक्षी—गवाह; कृत्याम्—निर्मित प्राणी को; माहा-ईश्वरीम्—शिवजी के; विभु:—सर्वशक्तिमान भगवान्; विज्ञाय—पूरी तरह जानते हुए; तत्—उसको; विघात—हराने के; अर्थम्—हेतु; पार्श्व—अपने निकट; स्थम्—खड़े; चक्रम्—अपने चक्र को; आदिशत्—आदेश दिया।

सबों के अन्त: और बाह्य साक्षी सर्वशक्तिमान भगवान् समझ गये कि यह दैत्य शिवजी द्वारा यज्ञ-अग्नि से उत्पन्न किया गया है। इस असुर को पराजित करने के लिए कृष्ण ने अपनी बगल में प्रतीक्षा कर रहे अपने सुदर्शन चक्र को रवाना कर दिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका है कि भगवान् कृष्ण राजा के रूप में द्यूत-क्रीड़ा में मग्न थे और अग्नि-तुल्य असुर के आक्रमण जैसे नगण्य कार्य से विचलित नहीं होना चाहते थे। अत: उन्होंने अपने चक्र को भेज दिया और उसे आवश्यक कदम उठाने का आदेश दिया।

तत्सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं
जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ।
स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी
चक्रं मुकुन्दास्त्रं अथाग्निमार्दयत् ॥ ३९॥

शब्दार्थ

तत्—उस; सूर्य—सूर्यों के; कोटि—करोड़ों; प्रतिमम्—सदृश; सुदर्शनम्—सुदर्शन को; जाज्वल्यमानम्—अग्नि से प्रज्वलित; प्रलय—ब्रह्माण्ड के संहार की; अनल—अग्नि (सदृश); प्रभम्—तेज; स्व—अपनी; तेजसा—गर्मी से; खम्—आकाश; ककुभ:—दिशाएँ; अथ—तथा; रोदसी—स्वर्ग तथा पृथ्वी; चक्रम्—चक्र को; मुकुन्द—कृष्ण के; अस्त्रम्—हथियार; अथ—भी; अग्निम्—(सुदक्षिण द्वारा उत्पन्न) अग्नि को; आर्दयत्—सताया।

भगवान् मुकुन्द का वह सुदर्शन चक्र करोड़ों सूर्यों की तरह प्रज्वलित हो उठा। उसका तेज

ब्रह्माण्ड की प्रलयाग्नि सदृश प्रज्ज्वलित था और अपनी गर्मी से वह आकाश, सारी दिशाओं, स्वर्ग तथा पृथ्वी एवं उस अग्नि-तुल्य असुर को भी पीड़ा देने लगा।

कृत्यानलः प्रतिहतः स रथाङ्गपाणे-
रस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः ।
वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं
सर्त्विग्जनं समदहत्स्वकृतोऽभिचारः. ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

कृत्या—योग-बल से उत्पन्न; अनलः—अग्नि; प्रतिहतः—हताश; सः—वह; रथ-अङ्ग-पाणेः—सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले कृष्ण के; अस्त्र—हथियार की; ओजसा—शक्ति से; सः—वह; नृप—हे राजा; भग्न-मुखः—पीछे मुड़कर; निवृत्तः—विरत; वारानसीम्—वाराणसी में; परिसमेत्य—सभी दिशाओं में पहुँचकर; सुदक्षिणम्—सुदक्षिण के; तम्—उस; स—सहित; ऋत्विक्-जनम्—उसके पुरोहितों को; समदहत्—जला दिया; स्व—अपने आप (सुदक्षिण); कृतः—उत्पन्न; अभिचारः—हिंसा करने के निमित्त।

हे राजन्, भगवान् कृष्ण के अस्त्र की शक्ति से विचलित, तंत्र से उत्पन्न वह अग्नि-तुल्य प्राणी अपना मुँह मोड़कर चला गया। तब हिंसा के लिए उत्पन्न किया गया वह असुर वाराणसी लौट आया जहाँ उसने नगर को घेर लिया और सुदक्षिण तथा उसके पुरोहितों को जलाकर भस्म कर दिया यद्यपि सुदक्षिण ही उसका उत्पन्न करने वाला था।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका इस प्रकार है : ''द्वारका में आग लगाने में असमर्थ होकर वह अग्नि-तुल्य असुर काशिराज की राजधानी वाराणसी लौट गया। उसके वापस होने से मंत्रों के आदेश में सहायक सारे पुरोहित अपने स्वामी सुदक्षिण समेत उस अग्निमय दैत्य के प्रज्ज्वलित तेज से जलकर भस्म हो गये। तंत्र में निर्देशित मंत्रों की विधि के अनुसार यदि मंत्र शत्रु का वध नहीं कर पाता तो वह अपने सृजनकर्ता का ही वध कर देता है क्योंकि इसके लिए किसी न किसी का वध करना आवश्यक है। सुदक्षिण उत्पन्नकर्ता था और पुरोहित उसके सहायक थे अतएव वे सभी जलाकर भस्म कर दिये गये। असुरों की यही रीति है। असुरगण ईश्वर को मारने के लिए कोई चीज उत्पन्न करते हैं किन्तु वे उसी अस्त्र से स्वयं मारे जाते हैं।''

चक्रं च विष्णोस्तदनुप्रविष्टं
वाराणसीं साट्टसभालयापणाम् ।
सगोपुराट्टालककोष्ठसङ्कुलां

सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालिनीम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

चक्रम्—चक्र; च—तथा; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; तत्—वह (अग्नि से उत्पन्न असुर); अनुप्रविष्टम्—प्रवेश करके; वाराणसीम्—वाराणसी को; स—सहित; अट्ट—अटालिकाएँ; सभा—उसके सभाभवन; आलय—निवास; आपणाम्—तथा बाजार; स—सहित; गोपुर—नगरद्वार; अट्टालक—बुर्जियों; कोष्ठ—तथा भण्डारों; सङ्कुलाम्—पुंजित; स—सहित; कोश—खजाने; हस्ति—हाथियों; अश्व—घोड़ों; रथ—रथों; अन्न—तथा अन्नों के लिए; शालिनीम्—महलों (गोदामों) सहित।

भगवान् विष्णु का चक्र अग्नि तुल्य असुर का पीछा करते हुए वाराणसी के भीतर भी घुसा और फिर नगर को भस्म करने लगा, जिसमें नगर के सभाभवन तथा अट्टालिकाओं से युक्त आवासीय महल, सारे बाजार, नगरद्वार, बुर्जियाँ, भण्डार तथा खजाने और हथसाल, घुड़साल, रथसाल तथा अन्नों के गोदाम सम्मिलित थे।

दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ।
भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत्कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

दग्ध्वा—जलाकर; वाराणसीम्—वाराणसी को; सर्वाम्—पूरी; विष्णोः—विष्णु का; चक्रम्—चक्र; सुदर्शनम्—सुदर्शन; भूयः—फिर से; पार्श्वम्—बगल में; उपातिष्ठत्—गया; कृष्णस्य—कृष्ण के; अक्लिष्ट—बिना किसी कष्ट या थकावट के; कर्मणः—जिसके कर्म।

सम्पूर्ण वाराणसी नगरी को जलाने के बाद भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र बिना प्रयास के कर्म करने वाले श्रीकृष्ण के पास लौट आया।

य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमःश्लोकविक्रमम् ।
समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; एनम्—इसको; श्रावयेत्—सुनाता है; मर्त्यः—मरणशील मनुष्य; उत्तमः-श्लोक—उत्तम श्लोकों से प्रशंसित भगवान् कृष्ण की; विक्रमम्—वीरतापूर्ण लीला को; समाहितः—पूरे ध्यान से; वा—अथवा; शृणुयात्—सुनता है; सर्व—समस्त; पापैः—पापों से; प्रमुच्यते—छूट जाता है।

जो भी मर्त्य प्राणी भगवान् उत्तमश्लोक की इस वीरतापूर्ण लीला को सुनाता है या केवल इसे ध्यानपूर्वक सुनता है, वह सारे पापों से मुक्त हो जाएगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''पौण्ड्रक—छद्म वासुदेव'' नामक छियासठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त स्वामी श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।